भारत में गठबंधन यानी समझौते की राजनीति : एक अध्ययन

Dr. Prem Kumar Nishad
Higher Secondary Teacher (History)
+2 Raj High School Darbhaga-846004.

भारत में गठबंधन की राजनीति अब जरूरत बन गयी है, साथ ही मौके का फायदा उठाने का औजार भी, अब केन्द्र में कोई पार्टी अकेले सरकार बनाने की स्थिति में नहीं दिखाई दे रही है। वर्ष 1984 के लोकसभा चुनाव में राजीव गॉधी की अगुआई में कांग्रेस ने दो तिहाई से ज्यादा सीटों पर जीत दर्ज की थी। लोकसभा चुनावों के इतिहास में यह सबसे बड़ी जीत थी। लेकिन इस जबरदस्त जीत के बाद भारत की राजनीति का ऊंट ने कुछ इस कदर बदली कि एक पार्टी के शासन के दौर का अंत ही हो गया। हालांकि 1991 में नरसिंहा राव के नेतृत्व में कांग्रेस की सरकार थी। लेकिन यह सरकार कामचलाऊ बहुमत के सहारे चलायी गयी थी। इस कामचलाऊ सरकार का ही नतीजा था कि उस पांच साल के दौरान सांसदों की खरीद–परोख्त की बहुत सी घटनाएं सामने आयीं। झारखंड मुक्ति मोर्चा सांसदों को रिष्वत देने की शर्मसार कर देनेवाली घटना भी इसी कामचलाऊ बहुमत की उपज थी। 1989 के चुनावों के बाद से भारतीय राजनीति में एक पार्टी के वर्चस्व का जो दौर खत्म हुआ, वह फिर लौटकर नहीं आया। इसे भारतीय राजनीति का उत्तर आधुनिक दौर भी कहा जा सकता है। जिसे कई विष्लेषक हाषिये के सषक्तिकरण, या हाषिये का उभार की संज्ञा देते हैं। यह क्षेत्रीय क्षत्रपों के उभार का युग था। यह ऐसा दौर था जब पहली वार केन्द्र की राजनीति स्थानीय मुद्दों के आधार पर

तय की जाने लगी। लोग देष के प्रधानमंत्री की जगह लोकसभा चुनाव में भी इस तरह वोट करने लगे जैसे वे राज्य के मुख्यमंत्री का चुनाव कर रहे हों। राजनीतिक विष्लेषकों का मानना है कि भारत की जनता को यह लगने लगा की केन्द्र में बैठी कोई एक बड़ी पार्टी उनके लिए वह काम नहीं कर सकती, जो खुद उनके क्षेत्र की कोई मजबूत पार्टी कर सकती है। कई लोग यह मानने लगे हैं कि भारत में गठबंधन की राजनीति का यह दौर लंबे समय तक चलने बाला है।

गठबंधन की राजनीति का रिवाज अब राज्यों में भी फैल गया है। राज्यों के भीतर भी एक पार्टी की सरकारों की संख्या काफी कम होती गयी है। प्रायः यह देखा जाता था कि एक पार्टी वाली सरकार की स्थिति में जब राज्य में कुछ होता था तो मुख्यमंत्री को दिल्ली जाना पड़ता था। लेकिन अब जब केन्द्र में भी कुछ होता है, जो केन्द्र के नेता राज्यों की राजधानी में कुर्सी बचाने की कोषिष में लगे दिखाई देते हैं। क्षेत्रीय मुद्दों और राजनीति किस कदर से जोर पकड़ चुकी है। इसका अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है और पिछले लोगसभा चुनाव में लालू प्रसाद यादव की आरजेडी पार्टी ने भारत की सबसे बड़ी कांग्रेस पार्टी के लिए बिहार में सिर्फ चार सीटें छोड़ने की बात कही थी। षिव सेना, डीएमके, एआईडीएमके, तेलुगु देषम, राजद, बीजेडी और झारखंड मुक्ति मोर्चा जैसी पीर्टीयाँ विषुद्ध रूप से क्षेत्रीय मसलों के आधार पर अपनी राजनीति करती है। हर बार इनकी सरकार भले ही न बने, लेकिन अपने–अपने राज्यों में इनकी दबदबा कायम है। इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि देष की राजनीति को क्षेत्रीय दल तय करे रहे हैं। देष में सबसे पहली बार गठबंधन सरकार की शुरूआत वर्ष 1967 में कई राज्यों में एक साथ हुए विधानसभा चुनाव के दौरान हुई। उस समय 17 प्रदेषों में से 7 में कांग्रेस को हार सामना करना पड़ा था। उस समय 6 राज्यों में विभिन्न दलों ने मिलकर संयुक्त विधायक दल के रूप में सरकार का गठन किया था। इस प्रकार देष में गठबंधन के सरकार की शुरूआत 44 वर्ष पहले हो गयी थी। संयुक्त विधायक दल का आधार गैर–कांगेसवाद था। इसमें दो परस्पर विरोधी ताकत– भारतीय जनसंध और समाजवादियों को मेंल हुआ था। लेकिन राजनीति का यह प्रयोग ज्यादा दिनों तक बनाने में भले ही असफल रही हो, लेकिन देष की राजनीति में इसने नयी विचारधार का सूत्रपात जरूर किया। वर्ष 1977 में जनता पार्टी को या इसके 12 वर्षो के बाद केन्द्र में राष्ट्रीय मोर्चा के भीतर दक्षिणपंथियों और वामपंथियों का गठबंधन, बार–बार इस फॉमूर्ले को आजमाया गया है।

भारतीय राजनीति के इतिहास में केन्द्र में गठबंधन राजनीति की शुरूआत पहली बार जयप्रकाष नारायण (जेपी) ने की थी। केन्द्र में पहली बार 1977 में मोरारजी देसाई की अगुआई में गठबंधन सरकार बनी। यह इमरजेंसी के बाद का दौर था। पूरे देष में इमरजेंसी लगाये जाने के विरोध में कांग्रेस के खिलाफ आंदोलन चलाए जा रहे थे। 1977 में जब चुनाव हुए तब जनता पार्टी ने जबरदस्त जीत हासिल की। केन्द्र में मोरारजी देसाई की अगुआई में पहली

गैर–कांग्रेसी और गठबंधन सरकार बनी। इमरजेंसी के बाद कांगेस विरोधी लहर ने कई क्षेत्रीय पार्टियों को सत्ता में भागीदारी का मौका दिलाया 1 सत्ता तक पहुॅचने में जनता पार्टी को पांच अन्य दलों के अलावा कांग्रेस छोड़ चुके नेताओं का भी समर्थन प्राप्त हुआ था। हालांकि, जेपी ने सबको एक साथ लेकर स्थिर सरकार बनाने की कोषिष की पर, यह प्रयास जल्द ही दम तोड़ने लगा और सिर्फ तीन साल के भीतर ही सरकार अल्पमत में आ गयी। जल्दी ही सरकार गठबंधन की अस्वभाविक प्रकृति और नेताओं की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं की भेंट चढ़ गयी। कुछ लोगों ने इसका अर्थ लगाया कि गठबंधन की राजनीति भारतीय परिवेष में अभी सही से पनप नहीं पायी है। इसके बाद कांग्रेस की 1980 और 1984 में धमाकेदार वापसी हुई।

बोफोर्स के जिन्न के साये में देष में 1989 में जब आम चुनाव हुआ, तो इसमें कांग्रेस की करारी हार हुई। पूर्व के चुनाव में 400 से ज्यादा सीट हासिल करने वाली कांग्रेस पार्टी 1989 में 200 का आंकड़ा भी पार नहीं कर सकी। हार स्वीकारते हुए वर्ष 1989 में जब तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने विपक्ष में बैठने का फैसला किया, तब कांग्रेस छोड़ चुके वीपी सिंह की अगुआई में जनता दल का गठन हुआ और राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार बनी। इस प्रकार लेफट फ्रंट और बीजेपी व अन्य के सहयोग से केन्द्र में एक बार फिर गठबंधन सरकार बनी। लेकिन इस सरकार ने भी अपना कार्यकाल पुरा नहीं किया। इसी दौर से भाजपा के लालकृष्ण आडवाणी ने गुजराज के सोमनाथ से देषव्यापी रथ यात्रा निकाली, रथयात्रा के दौरान जनता दल शासित बिहार में लालू यादव की सरकार द्वारा जब समस्तीपुर में लालकृष्ण आडवाणी को गिरफ्तार करने का फैसला किया गया तब इसके जवाब में बीजेपी ने राष्ट्रीय मोर्चा सरकार से समर्थन वापस ले लिया और सरकार गिर गयी। कांग्रेस विरोध के आधार पर एक छतरी ने नीचे आये दल एक बार फिर देष को स्थिर सरकार देने में नाकामयाब रहे। कई राज्यों में भी ऐसा ही प्रकरण दोहराया गया। कांग्रेस के समर्थन से चंद्रषेखर ने जो सरकार बनायी वह भी चार महीने ही चल पायी। देष में मध्यावधि चुनाव कराए गये। चुनाव प्रचार के दौरान पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी लिट्टे हमले में मारे गये ।इन चुनावों में कांग्रेस को 244 सीटें मिली और नरसिंह राव देष के नये पीएम बने। केन्द्र में सत्ता एक बार फिर कांग्रेस के 'टिकाऊ' हाथों में पहुंच गयी। राव सरकार को कई अन्य दलों और निर्दलीय सांसदों का समर्थन प्राप्त था।

इस क्रम में सबसे ज्यादा जिल्लत भाजपा सरकार को सहनी पड़ी। 1996 में अटल बिहारी बाजपेयी की अगुआई में एनडीए सरकार बनी। लेकिन सदन में बहुमत नहीं मिलने के कारण इनकों मात्र 13 दिन में ही पद से इस्तीफा देना पड़ा। देवगौड़ा और आइके गुजराज के रूप में तीसरे मोर्च की सरकार की असफलता के बाद देष में फिर से मध्यवधि चुनाव कराए गये। फिर वाजपेयी की अगुआई में एनडीए की सरकार बनी, पर 13 महीने के बाद एक एम0पी0 के लोकसभा में विरोध में मतदान के कारण यह सरकार गिर गयी। भाजपा को समर्थन दे रहे दलों के निजी हित सरकार को लील गये। किसी को मनमाफिक मंत्रालय चाहिए था, तो कोई अपनी पार्टी के ज्यादातर सांसदों को मंत्रीमंडल में स्थान दिलाना चाहता था। 1998 में कराए गये चुनाव में यह पहली बार हुआ कि कांग्रेस को न केवल सीटों के मामले में किसी पार्टी से कम सीट मिले, बल्कि उसका वोट प्रतिषत भी घटकर भाजपा के बराबर हो गया। लेकिन यह राष्ट्रीय दलों की लड़ाई के लिए याद रखी जाने वाले चुनाव नहीं थे। भाजपा को जो जीत मिली, उसमें वाजपेयी के करिष्में के अलावा क्षेत्रीय दलों के प्रदर्षन का अहम हाथ था। ऐसा पहली बार हुआ कि एक गठबंधन सरकार ने पांच वर्ष का कार्यकाल पूरा किया। इसने उस सिद्धांत को झूठा ठहरा दिया कि गठबंधन सरकारें स्थायी नहीं हो सकती। यह सिलसिला यूपीए के शासन में भी जारी रहा। लेकिन अहम सवाल यह है कि यह स्थिरता किस कीमत पर हासिल की गयी। ममता बनर्जी, जयललिता, लालू यादव, चंद्रबाबू नायडू, आकाली दल जैसी पार्टीयों ने सरकार को बचाए रखने की कीमत वसूलने में कोई संकोच नहीं किया। इसे आप केन्द्र की सरकार में राज्यों के बढ़ते दबदबे के तौर पर देख सकते है। लेकिन शासन में राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य का न होना देष के लिए नुकसानदेह साबित हुआ।

कुछ दिन पहले कांग्रेस महसचिव राहुल गांधी ने कहा कि वर्तमान भ्रष्टाचार और मंहगाई की वजह गठबंधन की राजनीति है। प्रधानमंत्री ने भी अपने प्रेस कांग्रेस में गठबंधन राजनीति की मजबूरियों का जिक्र किया, मनमोहन ने कहा है कि गठबंधन राजनीति की कुछ सीमाऐं होती है और सरकार को समझौता करना होता है। सवाल है कि क्या यह समझौता राजनीतिक लेन–देन से ऊपर उठकर भ्रष्टाचार के मामले में आंखे मूंद लेने को लकर भी है ? गठबंधन को दोष देना किसी समस्या का समाधान नहीं है। आज गठबंधन वक्त की हकीकत बन गयी है। जिस कॉमन मिनिमम प्रोग्राम के आधार सरकार को चलाया जाता है उसे कॉमन मिनिम

ईमानदारी और कॉमन, मैक्सिम भ्रष्टाचार का आधार नहीं बनाया जा सकता है। इस स्थिति से निकलने का रास्ता जनता ही निकालेगी।

कई लोकतांत्रिक देषों, जैसे–भारत, जर्मनी, बेल्जियम, इजरायल और इटली में गठबंधन सरकारें चल रही है। इन देषों में बहुत से राजनीतिक दलों को जनता मत देती है सरकार बनाने के लिये जरूरी सिटें जीतने में नाकाम रहती है। इसलिये यह जरूरी हो जाता है कि कई राजनीति दल एक साथ आयें और मिलकर सरकार बनाऐं। प्रायः सबसे बड़े राजनीतिक दल के नेतृत्व में सरकार का गठन किया जाता है। कुछ दूसरे लोकतांत्रिक देषों, जैसे– ब्रिटेन, अमेरिका और जापान में एक दलीय सरकार बनती है। वहां गठबंधन की अवधारना देखने को नही मिलती है। हालांकि ब्रिटन में इस बार गठबंधन सरकार बनायी गयी है। हर सिक्के के दो पहलू होते है, यह हमारे ऊपर निर्भर है कि हम इसे कैसे लेते है। गठबंधन सरकारों के साथ भी ऐसा होता है, इसके साथ भी सकारात्मक और नकारात्मक पहलू जुड़े है।

सकरात्मक पहलू :–

- गठबंधन सरकारें ज्यादा लोकतांत्रिक और ईमानदार हो सकती है, क्योंकि इनमें एकल पार्टी की तुलना में जनता के विभिन्न विचारधाराओं को समाहित किया जाता है। इस प्रकार गठबंधन सरकारों में कई विचारधारा के लोग एक साथ आते हैं। कोई निर्णय करते समय इनकी सभी की विचारधारा और हितों को ध्यान रखना पड़ता है।
- गठबंधन सरकारें चुनावों के समय जनता को कोई विकल्प प्रदान करके, उन्हें मतदान के लिए प्रेरित करती है। जिससे राजनीतिक व्यवस्था ज्यादा ईमानदार और सक्रिय बनती है। जिन देषों में एकदलीय प्रणाली है, वहां हमें विचारों में विविधता देखने को नहीं मिलती है, जबकि गठबंधन सरकारों में ढ़ेर सारी विचारधाराएं और हित समूह साथ में काम करते हैं। जहां पर गठबंधन सरकारें होती है, वहां पर बहुत सारी राजनीतिक पार्टियां होती हैं। इससे जनता को अपने वोट सर्वश्रेष्ठ पार्टी को देने में आसानी होती है। इससे कई मुद्दों पर बहस के लिए जगह मिलती है।

- गठबंधन सरकारें गुड गर्वेनेंस को तरजीह देती है, क्योंकि उन्हे बड़ी संख्या में जनता और उनके चुने हुए प्रतिनिधियों के शामिल होने से कोई भी विधेयक बगैर बहस के पारित नहीं हो पाता है।
- गठबंधन सरकार में प्रषासन के काम–काज में निरंतरता बनी रहती है। जिससे व्यवस्था में आयी खामियॉ दूर हो जाती है। जहॉ एकल पार्टी की सरकारें होती है और यदि यह लम्बे समय तक कायम रह जाती है, तो प्रषासनिक स्तर पर भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है। इसमें तानाषाही की गंध आने लगती है। विभिन्न पार्टीयों की सरकार होने पर सरकारें भी लगातार बदलती रहती है। इसका फायदा यह होता है कि अलग–अलग लोग मंत्रिपद ग्रहण करते है, जिससे प्रषासन में चुस्ती बनी रहती है। विभिन्न अनुभवी लोग के शामिल होने से प्रषासन बेहतर होता है।

नकारात्मक पहलू :–

- गठबंधन सरकारें शक्ति संतुलन में बहुत ही कम लोकतांत्रिक होती है। इसमें बड़े मंत्रालय और बड़े फैसले लेते समय छोटी पार्टियों को ध्यान में नहीं रखा जाता है। इसलिए छोटी पार्टियों ब्लैकमेकिंग का सहारा लेना शुरू कर देती है, जिससे भ्रस्टाचार को बढ़ावा मिलता है।
- गठबंधन सरकारों में पारदर्षिता का आभाव होता है। क्योंकि एक पार्टी के पास सरकार बनाने भर का बहुमत नहीं होता है। इसलिए चुनावों में वह जिस घोषणपत्र को जनता के सामने पेष करते है, वही अप्रषांगिक हो जाता है। सरकार गठन के बाद उनके सारे फैसलों का निर्धारण विभिन्न पार्टियों के सहमति के आधार पर होता है। जिससे चुनावों के दौरान किये गये उनके वादे झूठे हो जाते है और जनता को ठगा महसूस करती है।

2014 में नरेन्द्र मोदी जी के नेतृत्व में N.D.A. गठबन्धन की सरकार बनी जिसे N.D.A.-I कहा गया। 2019 में पुनः लोक सभा चुनाव में नरेन्द्र मोदी जी के नेतृत्व में N.D.A. II गठबन्धन की ही सरकार बनी है।

देखना यह है कि N.D.A.- II गठबन्धन की सरकार का भविष्य कैसा होगा।

Reference:-

- Karunakaran K.P.ed., Coalition Government in India, Simal I As, 1975.
- Subhash kashyap. C., The Politics of Defections-A study of state politics in India, Delhi, 1969.
- Rajni Kothari, Politics in Indian, New Delhi, 1970.
- Sukdev Nanda, Coalition Politics in Orissa, New Delhi, Sterling Publishers, 1979.
- Iqbal Narain Twilight ow Dawn, The Political change in india, 1967-1971 (Agra, 1972)
- Sahni, N.C. ed, Coalition Politics in India, Tullunder 1971.
- Jawarharlal Panday, State Politics in India. New Delhi, 1982.
- Iqbal Narain, ed, State Politics in India, Meerut, 1976.
- E.M.S. namboodiripad, Kerala Society and Politics, New Delhi, 1984.
- Thomas E.J., Coalition Came Politics In Kerala after Independence New Delhi, 1985.
- John P. John, Coalition Governments in Kerala 1957-70, Trivandrum. 1981.
- Krishnamurthy K.G. and Lakshmana Rao. G., Political Preferences in Kerala, New Delhi, 1968.
- Prabhat Khabar 13 January 2013.